International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(1): 139-143
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-11-2023
Accepted: 09-12-2023

शिवम् के दवे
पीएच.डी. छात्र, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट, गुजरात, भारत

Corresponding Author:
शिवम् के दवे
पीएच.डी. छात्र, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट, गुजरात, भारत

कठोपनिषद् में आत्मतत्त्व दर्शन

शिवम् के दवे

प्रस्तावना

गुरु के सानिध्य में प्राप्त हुआ ज्ञान 'उपनिषदीय' ज्ञान कहलाता है । हमारे जीवन में गुरु से प्राप्त हुआ ज्ञान अत्यंत पवित्रत्तम कहलाता है । हमारे धर्मग्रंथों में अनेक प्रकार के ज्ञान एवं गुढ तत्त्वों का वर्णन हैं, उसीमे एक उपनिषदीय विद्या भी है । मुख्य उपनिषद की संख्या वर्तमान समय में १०८ रही है परन्तु उसी में मुख्यतः १० है यथा- ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेय, तैतरेय, छान्दोग्य और ब्रृहदारण्क ।

प्रस्तुतः शोध-पत्र में 'कठोपनिषद में आत्मतत्त्व दर्शन' नामक शीर्षक के अनुसार 'आत्मतत्त्वम् शोधयामी' का एक प्रयास रहा है । कठोपनिषद में दो अध्यायों का समावेश किया गया है । दोनों अध्यायों में तीन-तीन वल्लियाँ मिलती है । बालक नचिकेता ने यमराज से तीन वर माँगें थे । उन तीनों वरों के क्रम में भी एक अद्‌भुत रहस्य है । उसका पहला वर था 'पितृपरितोष' । यह वर लौकिक शक्ति की भावना से ओतप्रोत है । लौकिक शक्ति के पश्चात मनुष्य को स्वभावतः पारलौकिक सुख की आकांक्षा होती है । पारलौकिक सुख जब प्रिय लगता है तो वह ऐहिक सुख की लेशमात्र भी परवाह नहीं करता । इसीलिए नचिकेता ने द्वितीय वर के रूप में स्वर्गलोक की उपलब्धि का साधनभूत अग्निविज्ञान माँगा । इस वर की याचना में मनुष्य मात्र की हितचिंता निहित है। उपरोक्त दोनों वरों की यमराज के द्वारा पूर्ति के पश्चात नचिकेता ने 'आत्मरहस्य ज्ञान' प्रदान के लिए उनसे प्रार्थना की ।[1] ('कठोपनिषद में आत्मतत्त्व दर्शन' : सोश्यल मीडिया पी.डी.एॅफ़ से)

पेयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येडस्तोत्मिके नायमस्तीति ।
एताद्रिश्चामनुशिष्ट स्त्व्याहं वराणामेव वरशत्रृत्रायः ।।

यमराज ने नचिकेता को इसके बदले दूसरे वर माँगने को कहाँ परन्तु उन सारे प्रलोभनों को ठुकराकर नचिकेता ने कहा- "वरस्तु में वरणीयः सः एत नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते" इस प्रकार जब यमराज ने देखा कि नचिकेता सभी कामनाओं लौकिक और पारलौकिक से सर्वथा विरक्त है तथा शमदमादि साधनों से संपन्न है तो उन्होंने उस बालक को आत्मविद्या का बोध देते हुए कहा-

इस भूतल पर कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनको आत्मा के विषय में कुछ सुनने का भी अवसर प्राप्त नहीं होता तथा कुछ अशुद्धचित्त पुरुष ऐसे हैं जो इसके विषय में सुनकर भी कुछ ज्ञान नहीं पाते । वस्तुतः इसका वास्तविक ज्ञान करने वाला कोई निपुण पुरुष ही होता है तथा ज्ञाता भी आश्चर्य रूप होता है ।

इस आत्मा का ज्ञान साधारण बुद्धिसंपन्न व्यक्ति के द्वारा कदापि नहीं कराया जा सकता । कारण यह है की वादियों द्वारा इसके विषय में अस्तिनास्ति, कर्ता-अकर्ता, शुद्धासुद्ध आदि नानाविध चिन्तन किए जाते हैं । इसका सम्यक ज्ञान अपृथगदर्शी आचार्य ही करा सकते है जो अपने प्रतिपाद्य ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो चुका है वही आचार्य इस बात की स्थापना करता है कि यह आत्मा वस्तुतः संपूर्ण विकल्पों से पूर्णतया रहित है ।[2] ('कठोपनिषद' : गीताप्रेस गोरखपुर)

वस्तुतः इस आत्मा की ना तो उत्पत्ति होती है और ना विनाश । यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है तथा शरीर के मृत्यु होने पर भी यह स्वयं नहीं मरता । शरीर मात्र को ही आत्मा समझने वाला व्यक्ति यदि किसी के शरीर का हनन कर यह समझता है कि उसने आत्मा का भी हनन कर लिया तो यह उसका भ्रम है । वस्तुस्थिति तो यह है कि शरीर के मारे जाने पर भी आत्मा मर नहीं जाता यह ना तो मरता है और ना मारा जाता है ।

इस आत्मा की स्थिति जीव की हृदयरूप गुहा में है । वह अणु से भी अणुतर एवं महान से भी महत्तर है । निष्काम पुरुष ही अपनी इंद्रियों के प्रसाद से आत्मा की इस महिमा को देखता है तथा शोक रहित हो जाता है । इस आत्मा की वास्तविक स्थिति यह है कि वह स्थिर रहकर भी दूरगामी है । शयन अवस्था में रहकर भी सब ओर पहुँचता है । यह आत्मा हर्षसहित एवं हर्षरहित भी है ।

शरीर में शरीर रहित तथा और अनित्य में नित्यस्वरूप इस महान एवं सर्वव्यापक आत्मा के विषय में जानकर बुद्धिमान पुरुष शौक नहीं करता है । इस आत्मा की प्राप्ति वेदाध्ययन के द्वारा असम्भव है । इसे धारणाशक्ति या अधिक श्रवण से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता । पाप कर्मों से अनिवृत, अशान्तन्द्रिय, असमाहित तथा चंचल चित्त वाला व्यक्ति आत्मज्ञान द्वारा इस आत्मा को कदापि प्राप्त नहीं कर सकता ।

'श्रीमद्भगवद-गीता' के द्वितीय अध्याय में भी आत्म स्वरूप निरूपण 'कठोपनिषद' के सदृश्य ही किया गया है । ये दोनों ग्रंथ समान रूप से आत्मा के स्वरूप को निर्धारण करते हैं ।[3] ('श्रीमद्भगवत-गीता' साधक-संजीवनी)

वस्तुत आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान वही कर सकता है जो अभेददर्शी आचार्य है, जो अविद्या का पूर्णतः हनन कर विद्या को प्राप्त कर चुका है तथा जो साधन चतुष्टय संबंध है ।

यमराज द्वारा नचिकेता को प्राप्त आत्म तत्वज्ञान संपूर्णतः लोगों के कल्याण अर्थ आज भी 'कठोपनिषद' के रूप में विद्यमान है । लेकिन उसे विशुद्ध बोधरूप अंकुर तो उसी हृदय में प्रस्फुटित हो सकता है, जो नचिकेता के सदस्य साधन चतुष्टय संपन्न है परम उदार बादल जल तो सभी स्थलों पर बरसाते हैं परंतु उसका परिणाम नानाविध भूमियों के योग्यतानुसार नानाविध होता है । ठीक यही बात शास्त्रोंपदेश के सम्बन्ध में भी लागू होती है । शास्त्रकृपा तथा ईश्वरकृपा तो सभी पर एकवत होती है, लेकिन आत्मकृपा की न्यूनाअधिकता परिणाम स्वरुप उससे होने वाले परिणामों में स्पष्ट अन्तर रहता है । 'केन-उपनिषद' की इस उक्ति के अनुसार 'इह चेदवेदिदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदि न्महति' इस मानव जीवन का परम लाभ आत्मामृत की प्राप्ति ही है । अतः इसकी प्राप्ति ही हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है ।

यमराज ने कहा- "हे नचिकेता ! कल्याण और सांसारिक भोग्य पदार्थों का मार्ग अलग-अलग है । ये दोनों ही मार्ग मनुष्य के सम्मुख उपस्थित होते हैं, किन्तु बुद्धिमान जन दोनों को भली-भांति समझकर उनमें से एक अपने लिए चुन लेते हैं । जो अज्ञानी होते हैं, वे भोग-विलास का मार्ग चुनते हैं और जो ज्ञानी होते हैं, वे कल्याण का मार्ग चुनते हैं । प्रिय नचिकेता ! श्रेष्ठ आत्मज्ञान को जानने का सुअवसर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है । इसे शुष्क तर्कवितर्क से नहीं जाना जा सकता" ।

यमराज ने बताया प्रिय नचिकेता ! **'ॐ'** ही वह परमपद है । **'ॐ'** ही अक्षरब्रह्म है । इस अक्षरब्रह्म को जानना ही 'आत्माज्ञान' है । साधक अपनी आत्मा से साक्षात्कार करके ही इसे जान पाता है; क्योंकि आत्मा ही 'ब्रह्म' को जानने का प्रमुख आधार है । एक साधक मानव-शरीर में स्थित इस आत्मा को ही जानने का प्रयत्न करता है ।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१/२/१८॥

अर्थात् यह नित्य ज्ञान-स्वरूप आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मृत्यु को ही प्राप्त होता है ।[4] ('श्रीमद्भगवत-गीता' अध्याय २ श्लोक २०) यह आत्मा न तो किसी अन्य के द्वारा जन्म लेता है और न कोई इससे उत्पन्न होता है । यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत अक्षय तथा वृद्धि से रहित है । शरीर के नष्ट होने पर भी यह विनिष्ट नहीं होता ।[5] (उपनिषद-अंक : गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या २०३)

हे नचिकेता ! "परमात्मा इस जीवात्मा के हृदय-रूपी गुफ़ा में अणु से भी अतिसूक्ष्म और महान् से भी अतिमहान रूप में विराजमान हैं । निष्काम कर्म करने वाला तथा शोक-रहित कोई विरला साधक ही, परमात्मा को कृपा से उसे देख पाता है । दुष्कर्मों से युक्त, इन्द्रियासक्त और सांसारिक मोह में फसा ज्ञानी व्यक्ति भी आत्मतत्त्व को नहीं जान सकता" ।

हे नचिकेता ! "जो विवेकशील है, जिसने मन सहित अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर लिया है, जो सदैव पवित्र भावों को धारण करने वाला है, वही उस आत्म-तत्त्व को जान पाता है; क्योंकि-

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धिया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि: ॥१/३/१२॥

अर्थात् समस्त प्राणियों में छिपा हुआ यह आत्मतत्त्व प्रकाशित नहीं होता, वरन् यह सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले तत्त्वदर्शियों को ही सूक्ष्म बुद्धि से दिखाई देता है ।[6] (उपनिषद-अंक : गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या २१२)

दूसरे अध्याय में परमेश्वर की प्राप्ति में जो बाधाएं आती हैं, उनके निवारण और हृदय में उनकी स्थिति का वर्णन किया गया है । परमात्मा की सर्वव्यापकता और संसार-रूपी उलटे पीपल के वृक्ष का विवेचन, योग-साधना, ईश्वर-विश्वास और मोक्षादि का वर्णन है । अन्त में ब्रह्मविद्या के प्रभाव से नचिकेता को ब्रह्म-प्राप्ति का उल्लेख है ।

परमात्मा ने समस्त इन्द्रियों का मुख बाहर की ओर किया है, जिससे जीवात्मा बाहरी पदार्थों को देखता है और सांसारिक भोग-विलास में ही उसका ध्यान रमा रहता है । वह अन्तरात्मा की ओर नहीं देखता, किन्तु मोक्ष की इच्छा रखने वाला साधक अपनी समस्त इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके अन्तरात्मा को देखता है । यह अन्तरात्मा ही ब्रह्म तक पहुंचने का मार्ग है । जहाँ से सूर्यदेव उदित होते हैं और जहाँ तक जाकर अस्त होते हैं, वहाँ तक समस्त देव शक्तियां विराजमान हैं । उन्हें कोई भी नहीं लांघ पाता । यही ईश्वर है । इस ईश्वर को जानने के लिए सत्य और शुद्ध मन की आवश्यकता होती है ।

यमराज नचिकेता को बताते हैं- हे नचिकेता ! "शुद्ध जल को जिस पात्र में भी डालो, वह उसी के अनुसार रूप ग्रहण कर लेता है । पौधों में वह रस, प्राणियों में रक्त और ज्ञानियों में चेतना का रूप धारण कर लेता है । उसमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता । वह शुद्ध रूप से किसी के साथ भी एकरूप हो जाता हैं जो साधक सभी पदार्थों से अलिप्त होकर परमात्मतत्त्व से लिप्त होने का प्रयास करता है, उस साधक को ही सत्य पथ का पथिक जानकर 'आत्मतत्त्व' का उपदेश दिया जाता है" ।

'हे नचिकेता! "उस चैतन्य और अजन्मा परब्रह्म का नगर ग्यारह द्वारों वाला है- दो नेत्र, दो कान, दो नासिका रन्ध्र, एक मुख, नाभि, गुदा, जननेन्द्रिय और ब्रह्मरन्ध्र । ये सभी द्वार शरीर में स्थित हैं । कर्म-बन्धनों से मुक्त होकर, जो साधक द्वारों के मोह से सर्वथा अलिप्त रहकर नगर में प्रवेश करता है, वह निश्चय ही परमात्मा तक पहुचता हैं शरीर में स्थित एक देह से दूसरी देह में गमन करने के स्वभाव वाला यह जीवात्मा, जब मृत्यु के उपरान्त दूसरे शरीर में चला जाता है, तब कुछ भी शेष नहीं रहता । यह गमनशील तत्त्व ही ब्रह्म है । यही जीवन का आधार है । प्राण और अपान इसी के आश्रय में रहते हैं । अब मैं तुम्हें बताऊंगा कि मृत्यु के उपरान्त आत्मा का क्या होता है, अर्थात् वह कहाँ चला जाता है ।

यमराज ने आगे कहा-

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन: ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥२/२/७॥

अर्थात् अपने-अपने कर्म और शास्त्राध्ययन के अनुसार प्राप्त भावों के कारण कुछ जीवात्मा तो शरीर धारण करने के लिए विभिन्न योनियों को प्राप्त करते हैं और अन्य अपने-अपने कर्मानुसार जड़ योनियों, अर्थात् वृक्ष, लता, पर्वत आदि को प्राप्त करते हैं ।

हे नचिकेता ! समस्त जीवों के कर्मानुसार उनकी भोग-व्यवस्था करने वाला परमपुरुष परमात्मा, सबके सो जाने के उपरान्त भी जागता रहता है । वही विशुद्ध तत्त्व परब्रह्म अविनाशी कहलाता है, जिसे कोई लांघ नहीं सकता । समस्त लोक उसी का आश्रय ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार एक ही अग्नितत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके प्रत्येक आधारभूत वस्तु के अनुरूप हो जाता है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों में स्थित अन्तरात्मा(ब्रह्म) एक होने पर भी अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है । वही भीतर है और वही बाहर है । 'एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा य: करोति' ।

दूसरे अध्याय की तृतीय वल्ली में यमराज ब्रह्म की उपमा पीपल के उस वृक्ष से करते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड के मध्य उलटा लटका हुआ है । जिसकी जड़े ऊपर की ओर हैं और शाखाएं नीचे की ओर लटकी हैं या फैली हुई हैं । यह वृक्ष सृष्टि का सनातन वृक्ष है । यह विशुद्ध, अविनाशी और निर्विकल्प ब्रह्म का ही रूप है ।

यमराज बताते हैं कि यह सम्पूर्ण विश्व उस प्राण-रूप ब्रह्म से ही प्रकट होता है और निरन्तर गतिशील रहता है । जो ऐसे ब्रह्म को जानते हैं, वे ही अमृत्य, अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं इस परब्रह्म के भय से ही अग्निदेव तपते हैं, सूर्यदेव तपते

हैं। इन्द्र, वायु और मृत्युदेवता भी इन्हीं के भय से गतिशील रहते हैं।

'हे नचिकेता! मृत्यु से पूर्व, जो व्यक्ति ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह जीव समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है, अन्यथा विभिन्न योनियों में भटकता हुआ अपने कर्मों का फल प्राप्त करता रहता है। यह अन्त: करण विशुद्ध दर्पण के समान है। इसमें ही ब्रह्म के दर्शन किये जा सकते हैं। जब मन के साथ सभी इन्द्रियाँ आत्मतत्त्व में लीन हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टारहित हो जाती हे, तब इसे जीव की 'परमगति' कहा जाता है। इन्द्रियों का संयम करके आत्मा में लीन होना ही 'योग' है। हृदय की समस्त ग्रन्थियों के खुल जाने से मरणधर्मा मनुष्य अमृत्व, अर्थात् 'मोक्ष' को प्राप्त कर लेता है। ऐसी विद्या को जानकर नचिकेता बन्धनमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो गया।

इस प्रकार संपत्ति के मोह से मोहित और निरंतर प्रमाद करने वाले अज्ञानी को परलोक नहीं सूझता। (वह समझता है) कि यह प्रत्यक्ष दिखने वाला लोक ही सत्य है, इसके सिवा दूसरा (स्वर्ग-नर्क आदि लोक) कुछ भी नहीं है। इस प्रकार मानने वाला अभिमानी मनुष्य बार-बार मुझ यमराज के वश में आता है।

जो (आत्मतत्त्व) बहुतों को तो सुनने के लिए भी नहीं मिलता, जिसको बहुत से लोग सुनकर भी नहीं समझ सकते, ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्त्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है (बड़ा दुर्लभ है)। उसे प्राप्त करने वाला भी बड़ा कुशल कोई एक ही होता है। और जिसे तत्त्व की उपलब्धि हो गई है, ऐसे ज्ञानी महापुरुष के द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ आत्मतत्त्व का ज्ञाता भी आश्चर्यमय है, (परम दुर्लभ है)।

अल्पज्ञ मनुष्य के द्वारा बतलाए जाने पर, (और उनके अनुसार) बहुत प्रकार से चिंतन किए जाने पर भी यह आत्मतत्त्व सहज ही समझ में आ जाए, ऐसा नहीं है। किसी दूसरे ज्ञानीपुरुष के द्वारा उपदेश न किए जाने पर इस विषय में मनुष्य का प्रवेश नहीं होता, क्योंकि यह अत्यंत सूक्ष्म वस्तु से भी अधिक सूक्ष्म है; (इसलिए) तर्क से अतीत है।

हे प्रियतम! जिसको तुमने पाया है, यह बुद्धि तर्क से नहीं मिल सकती। यह तो दूसरे के द्वारा कही हुई ही आत्मज्ञान में निमित्त होती है। सचमुच ही तुम उत्तम धैर्य वाले हो। हे नचिकेता! (हम चाहते हैं कि) तुम्हारे जैसे ही पूछने वाले हमें मिला करें।

नचिकेता ने कहा- "मैं जानता हूँ कि कर्मफलरूप निधि अनित्य है। अनित्य (विनाशशील) वस्तुओं से वह नित्य (परमात्मा) नहीं मिल सकता, इसलिए मेरे द्वारा (कर्तव्यबुद्धि से) अनित्य पदार्थों के द्वारा नाचिकेत नामक अग्नि का चयन किया गया (अनित्य भोगों की प्राप्ति के लिए नहीं)। (अतः उस निष्कामभाव की अपूर्व शक्ति से मैं) नित्य (परमात्मा) को प्राप्त हो गया हूँ"।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।।

हे नचिकेता! "जिसमें सब प्रकार के भोग मिल सकते हैं; जो जगत का आधार, यज्ञ का चिरस्थाई फल, निर्भयता की अवधि (और) स्तुति करने योग्य एवं महत्वपूर्ण है (तथा) वेदों में जिसके गुण नाना प्रकार से गाए गए हैं (और) जो दीर्घकाल तक की स्थिति से संपन्न है, ऐसे स्वर्गलोक को देखकर भी तुमने धैर्यपूर्वक उसका त्याग कर दिया, इसलिए (मैं समझता हूँ कि तुम) बहुत ही बुद्धिमान हो"।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।।१२।।

जो योगमाया के पर्दे में छिपा हुआ, सर्वव्यापी, सबके हृदयरूप गुहा में स्थित, संसाररूप गहन वन में रहने वाला सनातन है, ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मदेव को शुद्ध बुद्धियुक्त साधक अध्यात्मयोग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ।।१३।।

मनुष्य (जब) इस धर्ममय (उपदेश) को सुनकर, भलीभांति ग्रहण करके (और) उस पर विवेकपूर्वक विचार करके इस सूक्ष्म आत्मतत्त्व को जानकर (अनुभव कर लेता है, तब) वह आनंदस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को पाकर आनंद में ही मग्न हो जाता है। तुम नचिकेता के लिए (मैं) परमधाम का द्वार खुला हुआ मानता हूँ।[7] ('ईशादी नौ उपनिषद', शांकरभाष्य सहित : गीताप्रेस गोरखपुर)

निष्कर्ष

इस प्रकार 'कठोपनिषद' में यमराज और नचिकेता का सुन्दर संवाद है। इसमें एक बात और संशोधित होती है कि जिस व्यक्ति को यमराज या मृत्यु का भय लगता है वह एकबार अवश्य इस 'कठोपनिषद' का अध्ययन करे। इसमें जैसे एक पिता अपने पुत्र का समझा रहा हो उसी प्रकार यमराज नचिकेता को समझा रहे है। इसलिए जिसके कर्म शुद्ध है जो निष्पाप है उनको डरने की कोई जरुरत नहीं है। प्रस्तुत उपनिषद में श्रेय (आत्म-कल्याण)) और प्रेय (भोग) दो मार्ग बताए गए है। हम ज्यादातर जीवन में स्वार्थ के वशीभूत होकर प्रेय (भोग) को पसन्द करते है परन्तु यहाँ नचिकेता ने श्रेय (आत्म-कल्याण) का मार्ग पसन्द किया। उसने सारे प्रलोभनों और लालच को ठुकराया इससे उन पर प्रसन्न हुए यमराज ने आत्म-तत्त्व का ज्ञान प्रदान किया। हमें भी हमारे जीवन में प्रेय को ज्यादा प्राधान्य नहीं देकर श्रेय की प्राप्ति करनी चाहिए।

सन्दर्भ

1. 'कठोपनिषद में आत्मतत्त्व दर्शन' : सोश्यल मीडिया पी.डी.एॅफ़ से
2. 'कठोपनिषद' : गीताप्रेस गोरखपुर
3. 'श्रीमद्भगवत-गीता' साधक-संजीवनी, पृष्ठ संख्या २२०
4. 'श्रीमद्भगवत-गीता' अध्याय २ श्लोक २० पृष्ठ संख्या ३८
5. उपनिषद-अंक : गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या २०३
6. उपनिषद-अंक : गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या २१२
7. 'ईशादी नौ उपनिषद', शांकरभाष्य सहित : गीताप्रेस गोरखपुर